है, यह आनन्द ही रस है और रस ही काव्य की आत्मा है।

प्रश्न १४—काव्यदोषों के स्वरूप का विवेचन करते हुए काव्य-दोषों के भेदों का सामान्य परिचय दीजिए।

यदि उत्तम काव्य के लिए गुणों का होना आवश्यक है, तो वहाँ दोषाभाव का होना और भी आवश्यक है। इसीलिए संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने दोषों के

Scanned with CamScanner

अभाव को गुण माना है।[1] आचार्य भरत गुण को दोष का उल्टा मानते हैं।[2] भरत की यह मान्यता चिरकाल तक मान्य रही, परिणामस्वरूप दण्डी तक में दोष का कोई स्पष्ट लक्षण देखने को नहीं मिलता है। प्रायः सभी आचार्य दोषों के अभाव को उत्तम काव्य के लिए आवश्यक मानते हैं, इसीलिये भामह को काव्य में एक भी सदोष पद स्वीकार्य नहीं है।[3] दण्डी को काव्य में दोषों की अपेक्षा जरा भी सह्य नहीं है, क्योंकि वे काव्य की विफलता के कारण होते हैं। उदाहरण द्वारा इस बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहते है कि जैसे कुष्ठ का एक धब्बा सुन्दर शरीर को कुरूप बना देता है वैसे ही दोष काव्य को असुन्दर बना देते है, दोषों से बचना चाहिए।[4] यही नहीं, दण्डी के अनुसार कवि-कौशल एवं चमत्कार के द्वारा सभी दोष-सीमा का उल्लंघन कर गुण भी बन जाते हैं।अग्निपुराणकार के अनुसार दोष उद्वेगजनक होते हैं। वामन के अनुसार दोष गुण के विपर्यय होते हैं तथा अनुचित दोष सौन्दर्य की हानि करते हैं। महिमभट्ट काव्य में दोष की स्थिति अनुचित मानते हैं। काव्यालंकार के टीकाकार नमिसाधु भी दोषों को अनुचित मानते हैं। भोजराज दोषों को त्याज्य मानते हैं। जयदेव, मम्मट, हेमचन्द्र, भोजराज आदि काव्य के लक्षण में "निर्दोष' शब्द का प्रयोग कर काव्य में दोष के अभाव को आवश्यक मानते हैं।'[5] अग्निपुराणकार ने भी काव्य के लक्षण में दोष को वर्जित किया है।[6] आचार्य मम्मट ने मुख्यार्थ के अपकर्षक को दोष कहा है। उद्देश्य की प्रतीति का विघातक होना ही मुख्यार्थ का अपकर्ष है। मुख्यार्थ है रस।[7] आचार्य विश्वनाथ भी मुख्य अर्थ के अपकर्ष करने वाले तत्त्व को दोष कहते हैं।[8] रस का विघात तीन प्रकार से होता है—(१) रस की प्रतीति में विलम्ब, (२) अवरोध द्वारा, तथा (३) रस-प्रतीति में पूर्ण विघात। काव्य का प्रमुख तत्त्व रस है और रस के अपकर्ष करने वाले तत्त्व को काव्यदोष कहना सर्वथा उचित है। क्योंकि जब रस सदोष होगा, काव्य का मूलतत्त्व ही त्रुटिपूर्ण और सदोष है तब अन्य शब्द और अर्थ

Scanned with CamScanner

का कहना ही क्या। शब्द और अर्थ से निष्पन्न काव्य काव्यानन्द दे सकेगा; इसमें संदेह ही है।

हिन्दी साहित्य के आचार्यों ने मम्मट आदि के आधार पर ही काव्य के दोषों का विवेचन किया है। हिन्दी के आचार्यों में केशवदास 'कविप्रिया' में कहते हैं कि 'दूषण सहित कवित्त' से बचना चाहिए। पूर्ण लक्षण इस प्रकार है—"प्रभु न कृतघनी सेइये, दूषण सहित कवित्त।" श्रीपति ने 'काव्य-सरोज' चतुर्थ दल में दोषों का विवेचन किया है। उनकी दोष की परिभाषा इस प्रकार है—

जा पदार्थ के दोष ते आछो कवित नसाई।
दूषन तासो कहत हैं श्रीपति पण्डित राइ ।।

चिन्तामणि 'कविकुलकल्पतरु' में शब्द और रस के विघातक तत्त्वों को दोष कहते हैं—

शब्द अर्थ रस को जु इत देखि परै अपकर्ष।
दीन कहत है ताकि को सुने घटतु है हर्ष ।।

कुलपति मिश्र के अनुसार रस-निष्पत्ति का बाधक तत्त्व दोष है—

शब्द अर्थ में प्रकट ह्वै रस समुझन नहिं देय।
सो दूषण तन मन विथा जो जिय को हरि लेय ।।

भिखारीदास के अनुसार शब्द, वाक्य, रस और अर्थ में दोष होता है, इनसे बचकर कविता करनी चाहिये—

दो शब्द हूँ, वाक्य हूँ, अर्थ रसहु में ; होय।
तेहि तजि कविताई करै, सज्जन सुमती सोय ।।

प्रतापसाहि काव्यविलास में मुख्यार्थ के बाधक तत्त्व को दोष कहते हैं—

अर्थ बोध के मुख्य में, घात करत जो होई।
ताको दूषण कहत हैं शब्द अर्थ रस सोई ।।

उपर्युक्त विवेचन के अनन्तर हम कह सकते हैं कि हिन्दी के आचार्यों की दोष-विषयक मान्यता संस्कृत-काव्यशास्त्रोपजीवी है। इन हिन्दी के आचार्यों ने मुख्यार्थ (रस) के बाधक तत्त्व के रूप में काव्यदोषों को स्वीकार किया है।

दोष-भेद—नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने दोषों की संख्या दस मानी है, उनके नाम ये हैं—अगूढ़, अर्थान्तर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिप्लुतार्थ न्यायापेत, विषम; विसन्धि और शब्दहीन।[1] भामह ने तीन प्रकार के दोषों की चर्चा की है[2]—सामान्य दोष, वाणीदोष और अन्य दोष। सामान्य दोष निम्नलिखित हैं—नेयार्थ क्लिष्ट, अन्यार्थ, अवाचक, अयुक्त और गूढ़ शब्द। वाणीदोष—श्रुतिकटु, अर्थ-दुष्ट, कल्पना का श्रुतिदुष्ट। अन्यदोष—अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय, अपत्क्रम, शब्द-हीन. यतिभ्रष्ट; भिन्न, वृत्त विसन्धि, देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, प्रतिज्ञाहीन, हेतुहीन और दृष्टान्तहीन। भामह के अनुसार उपर्युक्त समस्त दोष एक-दूसरे में समन्वित

---

1. ना० शा० १७।८८

Scanned with CamScanner